INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

'पाण्डुलिपि' चित्रकला का एक प्रमुख आधार

डॉ. जया जैन [1]
[1] प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष चित्रकला, के.आर.जी. कॉलेज, ग्वालियर

शोध-सारांश
भारतीय चित्रकला के इतिहास का महत्वपूर्ण पृष्ठ पाण्डुलिपि सांस्कृतिक सभ्यता और ऐतिहासिक श्रृखंला का परिचय देती है। जब से मनुष्य ने गुफा की दीवार पर पहली खरोंच मारी उसे अपनी कला स्थिरता का ज्ञान हुआ। प्राचीन काल में मनुष्य अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए खड़िया अथवा गेरू मिट्टी से विभिन्न प्रकार के रेखा चित्रों एवं आकृतियों की रचना किया करता था। धीरे-धीरे लिपि का विकास होने पर भित्ति चित्रों शिलालेखों, ताम्रपत्रों, भोजपत्रों पर लेखन का कार्य किया गया। पाण्डुलिपियां भी लेखन व चित्रण की अनुपम कृति है।

मुख्य शब्द – पाण्डुलिपि, आधार, चित्रकला

Cite This Article: डॉ. जया जैन. (2019). "'पाण्डुलिपि' चित्रकला का एक प्रमुख आधार." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 241-246. https://doi.org/10.5281/zenodo.3592563.

पाण्डुलिपि भारतीय चित्रकला की अनमोल विरासत है यह धार्मिक भावनाओं सामाजिक जनजीवन व जीवन शैली का अनूठा परिचय देती है। पाण्डुलिपि प्रथमतः कलाकृति है कलात्मक काव्य के साथ सुन्दर लिप्यासन, कलात्मक लिपि लेखन, कलात्मक पृष्ठ सज्जा और कलात्मक चित्रविधान इसके मूल्य के साथ पाण्डुलिपि का भी मूल्य घटता बढ़ता है। पाण्डुलिपि संरचना में इन सभी अव्यवों का अनोखा संगम है।

पाण्डुलिपि का रूप समय के साथ-साथ बदलता रहा है पाण्डुलिपि के प्रत्येक अव्यव से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान और अनुसंधान का अपना-अपना इतिहास है। प्रत्येक के विकास के अपने सिद्धांत है इन अव्यवों की अलग सत्ता भी है। पर ये पाण्डुलिपि निर्माण में जब संयुक्त होते है तो बाहर से भी प्रभावित होते है। उनसे पाण्डुलिपि भी प्रभावित होती है।[1]

मुख्य रूप से पाण्डुलिपि के दो प्रकार ही मानते है-राजकीय क्षेत्र में राजा के द्वारा भी, राज्याश्रित भी रचनाएँ लिखी जाती हैं। इस प्रकार की सामग्री अभिलेखागरों में और शिलालेखादि की सामग्री 'राष्ट्रीय पुरातत्व संग्रहालयों में सुरक्षित रखी जाती हैं। इनके अतिरिक्त लिप्यासन की दृष्टि से भी' पाण्डुलिपि के अनेक भेद किये जा सकते हैं-.

कठोर लिप्यासन पर डकेरी गई या खोदी गई पाण्डुलिपियाँ सामान्यतः 7 प्रकार की बताई गई हैं। इनके भी अनेक भेद है। इन प्रकारों के भी निम्न प्रकार है-

पाषाणीय (शिलालेखादि)

(क) चट्टानीय (ख) शिलापट्टीय. (ग) स्तम्भीय (घ) मूर्तीय (ड़) अन्य2

ताड़पत्रः ताड़ (ताल, ताली) नामक वृक्ष की दो भिन्न जातियों के पत्ते है, ताड़ के वृक्ष दक्षिण में तथा समुद्र तट के प्रदेशो में विशेष रूप से पाये जाते हैं। थोडे मूल्य में मिल आने के कारण प्रारंभिक काल से ही ताड़ के पत्ते ग्रन्थ आदि लिखने के काम आते है। ताड़ के पत्ते बहुत बड़े-बड़े होते है उन्हें संधियों से काट कर अधिक लम्बी परन्तु चौड़ाई में एक से चार इंच तक की पट्टियां निकाली जाती है जिनमें से जितनी लम्बाई का पन्ना बनाना हो उतना काट लेते हैं। ग्रन्थ लिखने के लिए जो ताड़पत्र काम में आते थे उनको पहले सुखा देते थे फिर उनको पानी में उबालते या भिगो कर रखते थे। पीछे उनको फिर सुखाकर शंख, कोढे या चिकने पत्थर आदि से घोंटते थे। सम्पूर्ण भारत में ताड़पत्र का बहुत प्रचार था पश्चिमी और उत्तरी भारत में उन पर स्याही से लिखते थे। परन्तु दक्षिण वाले तीखे गोल मुख की शलाका को उनपर दबाकर अक्षर कुरेदते थे। फिर पन्नों पर कजल फिरा देते थे। जिससे अक्षर काले बन जाते थे।

भोजपत्र (भूर्जपत्र): भूर्ज नामक वृक्ष की जो हिमालय प्रदेश में बहुतायत से होता है भीतरी छाल है, सुलभता तथा कम मूल्य से मिलने के कारण प्राचीन काल में यह ग्रन्थ आदि के लिखने के काम मे बहुत आता था। ये प्रायः एक गज लम्बे और एक बालिसत चौड़े पत्र लेते है और उनको भिन्न भिन्न प्रकार से तैयार करते है। उनको मजबूत और चिकना बनाने के लिए उन पर तेल लगाते और घोंट कर चिकना करते है। उनको काट कर लेखक अपनी इच्छानुसार भिन्न-भिन्न चौड़ाई के पन्ने बनाते और उन पर स्याही से लिखते। ताड़पत्रों का अनुकरण कर भूर्ज पत्र की ग्रन्थों के प्रत्येक पन्ने का मध्य का भाग खाली छोड़कर उसमें छेद किया जाता था। ग्रन्थ के उपरी और नीचे रखी जाने वाली लकड़ी की पाटियों में भी उसी अंदाज से छेद रहता था। इस प्रकार सब पन्नों के छेदों में डोरी पोई जाकर पाटियों पर लपेट ली जाती थी।

अगरूपत्रीय(या सांची (समूची) पातीय) : पूर्वी भारत के आसाम में अगरूवृक्ष की छाल से तैयार पत्रों पर ग्रंथ लिखने और चित्र बनाने की परम्परा थी। अत्यधिक कष्ट से प्राप्त अगरूपत्र पर महत्वपूर्ण ग्रंथ या राजा-महाराजाओं के लिए लिखे जाने वाले ग्रंथ होते थे। लिखे हुए पत्रों पर संख्या मूलक अंक दूसरी ओर 'श्री' अक्षर लिखकर अंकित किया जाता था। प्रत्येक पत्र के मध्य में छिद्र बनाया जाता था, जिसमें पिरोकर डोरी बाँधी जाती थी। लिखित पत्रों की सुरक्षा के लिए ऊपर-नीचे लकड़ी के पट्टे या अगरू के ही मोटे पत्र लगाए जाते थे, जिन्हें 'बेटी पत्र' कहा जाता था।

लिखावट या चित्र बनाने से पूर्व इन पत्रों को मुलायम एवं चिकना बनाने के लिए 'माटीमाह' का लेप किया जाता था। इसके बाद कृमिनाद्राक हरताल (पीलेरंग) से रंग देते थे। धूप में सूखने के बाद अगरू छाल के ये पत्र चिकने हो जाते थे। ऐसे पत्रों को आसाम में 'संचीपात' कहा जाता है। कोमलता और चिकनेपन के कारण ये पत्र दीर्घायु भी होते थे।

भारत में 7 वीं शती के 'हर्ष चरित' में बाण भट्ट ने 'अगरपत्रों' के प्रयोग करने की बात का उल्लेख किया है। वह कहता है कि कामरूप् के राजा भास्कर वर्मा ने सम्राट हर्षवर्धन के दरबार में अगरू छाल पर लिखे हुए ग्रंथ भेंटस्वरूप भेजे थे। ''अगरूवल्कल-कल्पित-संचयानि च सुभाषितभांजि पुस्तकानि...।'' इससे पूर्व बौद्ध-

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592563

तांत्रिक ग्रंथ भी सांचीपात या अगरूवल्कल पत्रों पर लिखे जाते थे। महराजा संग्रहालय, जयपुर में भी सांचीपत पर लिखित महाभारत के कुछ पर्व प्राप्त हुए हैं।

पटीय (वस्त्र-पत्र): प्राचीनकाल में पाण्डुलिपि लिखने, चित्र बनाने एवं यंत्र-मंत्रादि लिखने हेतु सूती कपड़े का प्रयोग किया जाता था। सूती कपड़े छिद्रों को भरने के लिए आटा, चावल मांड, ल्हाई या मोम लगाकर उसकी परत बनाकर सुखा लेते थे। सूखने पर आकीक, पत्थर, शंख, कौड़ी या कसौटी के पत्थर से घोटकर उसे चिकना बनाया जाता था। इसके बाद उस पर लेखन या चित्रांकन किया जाता था। ऐसे पटीय ग्रंथ 'पट- ग्रंथ ' तथा पटीय-चित्र 'पट-चित्र' कहलाते थे। ऐसे पंटो पर यंत्र-मंत्रादि लिखे जाते थे। जैन मताबलंबी उस पर अढ़ाई द्वीप, तेरह द्वीप, जम्बू द्वीप तथा सोलह स्वप्न आदि के चित्र एवं नक्शो भी बनाये जाते थे। धीरे-धीरे मंदिरों में प्रतिमा के पीछे की दीवार पर लटकाने के सचित्र पट भी बनने लगे। इन्हें पिछवाई कहते हैं। राजस्थान में इस प्रकार की पिछवाई बनाने का केन्द्र नाथद्वारा रहा है, जहाँ श्रीनाथ जी की बहुमूल्य एवं सुन्दर-सुन्दर पिछवाईयाँ बनाई जाती हैं। राजस्थान के लोक देवताओं, जैसे-पाबूजी, रामदेवजी, देवनारायण जी आदि की फड़ें भी ऐसे ही पटों पर चित्रांकित की जाती रही हैं।

महाराजा संग्रहालय, जयपुर में 17 वी. - 18 वीं शताब्दी के पटों पर लिखित एवं चित्रित अनेक तांत्रिक नक्शो, देवचित्र एवं वास्तुचित्र उपलब्ध हैं। जैन धर्मावलम्बियों द्वारा 'पर्यूषण पर्व' के अन्तर्गत अनेक सामूहिक क्षमापन पत्र भी ऐसे ही पटों पर लिखे जाते थे। इन्हें 'विज्ञप्ति-पत्र' भी कहा जाता था। इस प्रकार के पत्रों की खोज जैन- ग्रंथ -भंडारों में अपेक्षित है।

चर्मपत्रीयः चर्मपत्रीय पाण्डुलिपियों की उपस्थिति तो बहुत प्राचीनकाल से ही मानी जाती है, किन्तु भारत में धार्मिक कारणों से चर्मपत्र पर लेखन का कार्य बहुत कम हुआ है। भारत के अलावा यूनान, अरब, योरोप और मध्य एशिया के देशो में प्राचीन काल से ही पार्चमैण्ट (चमड़े से निर्मित) के चर्मपत्र पर लेखन कार्य होता था। सोक्रेटीज ने भेड़ के चर्म-पत्र का उल्लेख किया है।

काष्ठीयः काष्ठीय या काष्ठपट्टीय ग्रंथ लिखने की परम्परा भी अति प्राचीन है। विगत 50 वर्ष पूर्व तक विद्यालयों में विद्यार्थी का सुलेख सुधारने के लिए काष्ठपट्टी पर काली स्याही से लिखाई करने का रिवाज था। उसे मुल्तानी मिट्टी या खड़िया से पोत कर पुनः लिखा जाता था। वस्तुतः पाटी पर पोती जाने वाली मुलतानी को 'पाण्डु' कहा जाता था। इसलिए प्रारंभ में मूललेख को 'पाण्डुलिपि' कहा जाने लगा था। जैनों के 'उत्तराध्ययन सूत्र' की टीका की रचना सं. 1129 में नेमिचन्द्र नामक विद्वान द्वारा की गई थी। उसमें भी काष्ठीय या पाटी से नकल करने का उल्लेख मिलता है। खरोष्ठी लिपि में लिखित कुछ काष्ठपट्टीय ग्रंथ खोतान में भी उपलब्ध हैं। कभी-कभी तो ग्रंथ की सुरक्षार्थ ऊपर-नीचे लगाए गए काष्ठ फलकों पर भी लेख मिलते हैं। काष्ठ फलकों पर लेखनकाल की तरह चित्रकला का भी अंकन हुआ है। चित्रकला उपादानों में काष्ठ फलक के चित्र सबसे ज्यादा टिकाऊ और रंग चमकीले रहते हैं। जैन ज्ञान भण्डारों में ताड़पत्रीय प्रतियों के काष्ठफलक लगभग 900 वर्ष प्राचीन मिलते हैं। इन चित्रों में प्राचीनतम चित्र श्री जिनबल्लभी सूरि और कुमारपाल व वादिदेव सूरि कुमुदचंद के शास्त्रार्थ के भाव चित्रित काष्ठ फलक भी पाये जाते हैं। चित्र कलात्मक काष्ठ फलकों की दृष्टि से राजस्थान में जैसलमेर के ग्रंथ भण्डार अपना विशेष महत्व रखते हैं। काष्ठ स्तम्भों एवं भज की गुफा की छतों की काष्ठ मेहराबों पर भी लेख प्राप्त हुए हैं।

कागज़ः ताड़पत्र, भोजपत्र आदि के उपरांत कागज़ का अविष्कार चीन में हुआ। हाथ का बना हुआ लोगड़ा कागज, हाथ की बनी हुई स्याही और हस्तलिखित लाखों आदि संग्रहालय में है। भारत में चौथी शताब्दी में

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592563

भी रूई या चीथड़ों से कागज बनाते थे परन्तु हाथ से बने हुए कागज सस्ते और सुलभ नहीं हो सकते इसलिए यहां भारत में प्राचीन काल में ताड़पत्र और भोजपत्र का प्रयोग अधिक हुआ कागजों का कम। यहां के बने कागज चिकने न होने से ग्रंथ लिखने की पक्की स्याही फैल जाती थी इसलिए उनपर गेंहू या चावल के आटे की पतली लेही लगाकर उनको सुखा देते थे। जिससे वह कढे पड जाते थे फिर शंख आदि के घोंटने से चिकने व कोमल हो जाते थे। भारत में जलवायु के कारण कागज बहुत अधिककाल तक नहीं रह सकता था।

रूई का कपड़ा : रूई का कपड़ा जिसको पट कहते है प्राचीन काल से लिखने के काम में कुछ आता था उसे भी कागजों की तरह पहले आटे की पतली लेही लगाकर सुखाते है फिर शंख आदि से घोट कर चिकना बनाते है तब वह लिखने के काम आता हैं जैन मंदिरों की प्रतिष्ठा के समय अथवा उत्सवों पर रंगीन चावल आदि अन्नों से भिन्न भिन्न मंडल बनाये जाते है उनकी पटों पर बने हुए रंगीन नक्शो का संग्रह जैन मंदिरों में जगह जगह मिलता है।[3]
मुनि पुण्यविजयजी ने आकार के आधार पर पाण्डुलिपियों के 5 प्रकार बताए हैं-

- गण्डी: ताड़पत्रीय आकार के कागजों या ताड़पत्र पर लिखी हुई ऐसी पाण्डुलिपि जो मोटाई और चौड़ाई में समान होते हुए लम्बे आकार की होती है, गण्डी कहलाती है।
- कच्छपी: कछुए के आकार का ऐसा ग्रन्थ जो किनारों पर संकरा तथा नीच में चौड़ा होता है। इनके किनारे या छोर या तो गोलाकार होते है या तिकोने। इस प्रकार के आकार को पाण्डुलिपि कच्छपी कहलाती है।
- मुष्टी: चार अंगुल आकार की, मुठ्ठी में पकड़ी जाने वाली लघु पाण्डुलिपि की मुष्टी कहते हैं। हैदराबाद के सालारजंग संग्रहालय में एक इंच माप की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित है।
- सम्पुटफलक: सचित्र काष्ठ पट्टिकाओं पर लिखित पाण्डुलिपि को सम्पुटफलक कहते है।
- छेदपाटी: लम्बे-चौड़े, परन्तु संख्या में कम (मोटाई कम) पत्रों की पाण्डुलिपि को छेदपाटी या छिवाड़ी कहते हैं।

लेखन शैली के आधार पर पाण्डुलिपि के तीन भेद किये जाते है।

1) त्रिपाटः जब पाण्डुलिपि का पृष्ठ तीन भागों में बाटंकर लिखा जाता है उसे चित्रपट कहा जाता है जिस पाण्डुलिपि के उपर नीचे छोटे अक्षरों में टीका का अर्थ लिखा जाये और मध्य भाग में मूलग्रंथ के श्लोक आदि लिखे गए हो उसे त्रिपाट पाण्डुलिपि कहते है।
2) पंचपाटः चित्रपाट की तरह पंचपाट में भी प्रष्ठ के पांच भाग कर लिखा जाता है चित्रपाट शैली के अतिरिक्त दाए बायें के हाशियों में भी कुछ लिखकर पंचपाट बनाया जाता है।
3) शुंडः शुंड या शूंड आकार की पाण्डुलिपियाँ लिखी तो जाती थी किंतु वे आजकल उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार की पाण्डुलिपि में लेखक द्वारा लिखित पृष्ठ हाथी की सूंड के आकार का दिखाई देता है। इसमें ऊपर की पंक्ति सबसे बडी होती है बाद वाली क्रमश दोनों ओर से छोटी होती जाती है अंतिम सबसे छोटी पंक्ति होने के बाद पूरा पृष्ठ हाथी की सूंड के आकार का दिखने लगता है।

चित्रसज्जा के आधार पर प्रायः पाण्डुलिपि में चित्रसज्जा दो दृष्टियों से की जाती है 1. सजावट के लिए 2. सन्दर्भगत उपयोग के लिए ये दोनो ही प्रकार एक स्याही में भी हो सकते है और विविध रंगों की स्याही में भी। भारत में पाण्डुलिपियों में चित्रांकन में प्राचीन परम्परा रही है 11वी शती से 16वीं शती के मध्य पाण्डुलिपि चित्रशैली का अधिक विकास हुआ। इस चित्रशैली को विद्वानों ने अपभ्रंश शैली नाम दिया है। पं. उदय शंकर शास्त्री कहते है जैन पाल पौथियों के चित्र अपभ्रंश शैली के हैं जिनमें कहीं कहीं प्रतीत होता है कि ये अपनी आरम्भिक शैली में है पर पाल पोथियों (पाल राजाओं के राज्यकाल की) ये चित्र निश्चित ही अजन्ता शैली के

प्रतीत होते है। मुख्यतः ये चित्र जैन सम्बन्धि पोथियों (पाण्डुलिपि) बीच-बीच में छोड़े हुए चौकोर स्थानों में बने हुए मिलते है। इस दृष्टि से राजस्थान में जैसलमेर के ग्रंथ भंडार विशेष उल्लेखनीय है। यहां की सचित्र 15 वी. शती की एक कल्पसूत्र एवं काल्काचार कथा की प्रति का विवरण सारा भाई नवाब ने प्रकाद्दित किया है। अपभ्रंश शैली की चित्रकला में जैनधर्म ग्रंथों का बड़ा भारी योगदान रहा है।[4] किसी भी प्रकार के लिपसायन पर लिखि रचना पाण्डुलिपि के श्रेणी में आती है। पाण्डुलिपि के अनेक प्रकार हो सकते है।

पाण्डुलिपि रचना के प्रक्रिया में तीन प्रमुख घटक हैः-
1. लेखक, 2. सहायक सामग्री, 3. लिपि।

लेखकः-

पाण्डुलिपि रचना का प्रमुख घटक लेखक हुआ करता है। भारतीय परम्परा के ग्रंथी में लेखक अथवा लिपिकार के अनेकगुण स्वीकार किये गये है। लेखक को विभिन्न क्षेत्रों, कालों की वर्णाकृतियों का ज्ञान विभिन्न ग्रथों व अनेक भाषाओं का ज्ञान होना अति आवश्यक है। अच्छे लिपिकार ग्रंथ के अंत में ग्रंथ के महत्व एवं सुरक्षा की दृष्टि अनेक निर्देश परक श्लोक दिया करते थे एवं ग्रंथ लेखन संबंधी कष्टों को भी इन श्लोकों द्वारा अभिव्यक्त किया करता था।

जलाद् रक्षेद् स्थलाद् रक्षेद्, रक्षेद् शिथिल बंधनाद्। मूर्ख हस्ते न दाताव्या एवं वदति पुस्तिका॥1॥
अग्ने रक्षेत् जलात् रक्षेत् मूषकेभ्यो विशेषतः। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन् परिपालयेत॥2॥
उदकानिल चौरेभ्यो, मूषकेभ्यो विशेषतः। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन् परिपालयेत्॥3॥
भग्न मुष्टि कटि ग्रीवा वक्र दृष्टिरघोमुखः। कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन् परिपालयेत्॥4॥
कष्ट ग्रीवा, अर नैनगर, तन दुखः सहत सुज्ञान। लिखौजात अति कष्ट सौ, सठ जानत आसान॥5॥

अर्थात ग्रंथ की जल से रक्षा करनी चाहिये, अच्छे स्थान पर रखना चाहिए, उनके पन्नों को जिससे डोर आदि से बांधा गया है वह बंधन ढीला नहीं होना चाहिए नही तो पत्र गिर सकते है, मूर्ख व्यक्ति के हाथ में नहीं देना चाहिए ऐसा पुस्तक कहती है। वहीं शास्त्र की रक्षा अग्नि से करनी चाहिए, जल से रक्षा करनी चाहिए विशेषकर चूहों से। कष्ट पूर्वक लिखे गये शास्त्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। जल, अग्नि चोरों और विशेष रूप से चूहों से रक्षा करनी चाहिए इन शास्त्रों की जो कष्टपूर्वक लिखे गये हैं उनकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए। शास्त्र लिखते-लिखते हाथों में जो कष्ट, कमर व गर्दन में कष्ट, दृष्टि में वक्रता व लिखते-लिखते नीचे किए मुख के कष्टों से लिखे शास्त्रों का यत्न से परिपालन करो रक्षा करो। कमर, गर्दन, आंख तन के दुख को लेखक सज्जन व्यक्ति आसान से सहन कर लेता है जिसे उसने कष्टों से लिखा है वहीं दुष्ट मूर्ख जन शास्त्र लिखना आसान मानते है।[5]

पाण्डुलिपि रचना की सहायक सामग्रीः-

ग्रंथ लेखन में मुखय रूप से निम्न सामग्री का प्रयोग किया जाता है। पाण्डुलिपियां ताड़पत्र, भोजपत्र, काष्ठ की पट्टियों पर, वस्त्र, चमड़ा, कागज़, धातुओं आदि पर उपलब्ध हुई है। किन्तु मुख्यतः पाण्डुलिपियां तीन प्रकार की प्राप्त हुई हैं:
1.ताड़पत्र, 2. भोजपत्र, 3. कागज़

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592563

लिपि-

पाण्डुलिपि सरंचना से लिपि का बहुत महत्व है लिपि शब्द अर्थ है लिखना लिपि के कारण ही कोई चिन्हित वस्तु हस्तलेख या पाण्डुलिपि कहलाती है। लिपि किसी भाषा को चिन्हों में बाधंकर दृश्य और पाठ्य बना देती है। विश्व में कितनी ही भाषाऐं और कितनी ही लिपियां है। भाषा का जन्म लिपि से पहले होता है। लिपि का जन्म बहुत बाद में होता है। लिपि का संबध चिन्हों से है चिन्ह अक्षर कहे जाते है। यह भाषा की किसी ध्वनि के चिन्ह होते है। संस्कृति और सभ्यता के विकास से भाषा नये अर्थ, नयी शक्ति और क्षमता तथा नया रूपांतरण भी प्राप्त करती है। शब्द की इकाइयों से उनके ध्वनि तत्व तक सहज ही पहुचां जा सकता है। ध्वनियों के विशलेषण से किसी भाषा की आधार भूत ध्वनियों का ज्ञान मिल सकता है इस चरण पर आकार ही ध्वनि (शब्द) को दृद्रय बनाने के लिए चिन्ह की परिकल्पना की जा सकती है।[6]

पाण्डुलिपि हमारी मूर्त विरासत के अंग है यह न केवल हमारी धर्म परम्परा अपितु पूर्वजों द्वारा प्रदत्त हमारी पृष्ठभूमि को भी संबल प्रदान करते है। इस सांस्कृतिक सम्पदा का संरक्षण करने में पाण्डुलिपि संरक्षण हेतु अनेक राष्ट्रीय व निजी संस्थाओं द्वारा देश के विभिन्न भागों में संगोष्ठी सह कार्य शालाऐं आयोजित की जाती है इन संस्थाओं द्वारा पाण्डुलिपि संरक्षण किया जाता है पाण्डुलिपि संरक्षण सहयोगी केन्द्र एम.सी.पी.सी. व एम.आर.सी. आदि संस्थाऐं पाण्डुलिपि संरक्षण में तत्पर होकर कार्य कर रहीं है। भारत में एक करोड़ पाण्डुलिपियों के विद्यमान होने का अनुमान है इस दृष्टि से भारत में कदाचित पाण्डुलिपियों का सबसे बड़ा भण्डार है। पाण्डुलिपियों राष्ट्रीय सूचीकरण के लिए राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन भारत में विस्तृत पाण्डुलिपि प्रलेखन कार्य में संलग्न है। 7 2019 की स्थिति में 23 लाख 40 हजार पाण्डुलिपि के संबंध में सूचना राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन की वेब साईट उपलब्ध है।

संदर्भ

[1] डॉ. सत्येन्द्र वर्ष 1989, पाण्डुलिपि विज्ञान, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृ. सं. VIII, IX
[2] डॉ. शर्मा महावीर प्रसाद वर्ष 2003 सामान्य पाण्डुलिपि विज्ञान, अपभ्रंश साहित्य अकादमी श्री महावीर जी पृ.सं. 88, 89
[3] बहादुर राय, वर्ष 1918, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, अजमेर, पृ. सं. 142-146
[4] डॉ. शर्मा महावीर प्रसाद वर्ष 2003 सामान्य पाण्डुलिपि विज्ञान, अपभ्रंश साहित्य अकादमी श्री महावीर जी पृं.सं. 102, 103
[5] डॉ. जैन जया, वर्ष 2019, जर्नल्स कला कल्प इंदिरागांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र दिल्ली पृं. सं.216
[6] डॉ. शर्मा महावीर प्रसाद वर्ष 2003 सामान्य पाण्डुलिपि विज्ञान, अपभ्रंश साहित्य अकादमी श्री महावीर जी पृं.सं. 88 से 103
[7] रिपोर्ट 2010-2011 राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन मानसिंह रोड़ नई दिल्ली पृं. 14